आखर हिंदी पत्रिका; e-ISSN-2583-0597 खंड 6/अंक 3/सितंबर 2026

Received: 5/09/2026; Accepted: 20/9/2026; Published: 2/10/2026

आदिवासी काव्य में सामाजिक जीवन

Dr. K. Madhavi

Associate Professor of Hindi

Govt. Degree college

Ibrahimpatnam, Hyderabad.

Phone No. 9912838898

Mail id: gopimadhu2014@gmail.com

Dr. K. Madhavi, आदिवासी काव्य में सामाजिक जीवन, आखर हिंदी पत्रिका, **खंड 6/अंक 3/सितंबर 2026**,(310 -312)

This work is licensed under CC BY-NC 4.0

https://doi.org/10.5281/zenodo.23219666

शोध सार :

आदिम जातियों और जनजातियों के लिए 'आदिवासी' शब्द का प्रयोग किया जाता है। आदिवासी अपनी विशिष्ट परंपराओं, रीतिरिवाज-, अपने सामाजिक संस्कृति के धरोहर को संजोकर विरासत के रूप में अपनी अगली पीढ़ी को प्रदान कर रहे हैं। किन्तु वर्तमान समय में इनका सामाजिक एवं सांस्कृतिक अस्तित्व संकट में पड़ गया है। बाजारवाद, औद्योगीकरण के कारण अपनी ही जमीन से बेदखल किये जा रहे हैं।

आदिवासी कवियों ने अपनी कविताओं में आदिवासियों के समस्याओं का यथार्थ चित्रण कर, उनकी बेबसी को बुलंद आवाज प्रदान करने का सप्रयास कर रहे हैं। वर्तमान समय में राजनीति के नाम पर हो रहे षड्यंत्रों का पर्दाफ़ाश कर, आदिवासियों पर हो रहे सामाजिक और आर्थिक शोषण का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने के लिए कवियों ने कमर कस ली है।

बीज शब्द :

आदिवासी साहित्य – विभिन्न नाम आदिवासी साहित्यपन विस्था-कारआदिवासी साहित्य-विकास-सामाजिक और आर्थिक शोषण।-मूलक संवेदनाअस्तित्व-यथार्थ-शोषण-लोकतंत्र-की पीड़ा

जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि।

कवि, कविता के माध्यम से अपने हृदयगत अनुभूतियों को ही नहीं, वरन् सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्र में बदलते मूल्यों के प्रति भी अपनी अभिव्यंजना को सशक्त रूप से व्यक्त करते हैं।

आज हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श उभर रहा है। मुख्य रूप से आदिवासी कविता का आधार जल, जंगल और जमीन से जुड़ी हुई है।

आदिवासियों का परिचय देते हुए डॉ -विनायक तुमराम ने लिखा है कि .

"वर्तमान स्थिति में 'आदिवासी' शब्द" का प्रयोग विशिष्ट पर्यावरण में रहने वाले, विशिष्ट भाषा बोलने वाले, विशिष्ट जीवन पद्धति तथा परंपराओं से सने और सदियों से जंगलोंपहाड़ों में जीवनयापन - समूह का परिचय करा देने - को संभालकर रखने वाले मानवतिक मूल्योंकरते हुए अपने धार्मिक और सांस्कृ के लिए किया जाता है।"[1]

आदिवासियों के अस्तित्व की रक्षा व उनकी संवेदना को वाणी प्रदान करने के लिए आदिवासी साहित्य का आविर्भाव हुआ है क्यों कि आज औद्योगीकरण, उदारीकरण की नीति के कारण बाजारवाद अर्थात् मुक्त बाजारवाद ने अपने पैरों को पसारना आरंभ कर दिया। इस औद्योगीकरण के नाम पर आदिवासी को विस्थापित कर दिया जा रहा है। आज आदिवासी साहित्य उनकी पीड़ा को, जीवन संघर्ष को स्वर प्रदान कर रहा है। अत :"आदिवासी साहित्य से तात्पर्या से है जिसमें आदिवासियों का उस साहित्य - जगहों पर को विभिन्न हुआ है। आदिवासी साहित्यजीवन और समाज उनके दर्शन के अनुरूप अभिक्त, विभिन्न नामों से जाना जाता है।

यूरोप और अमेरिका में इसे नेटिव अमेरिकन लिटरेचर, कलर्ड लिटरेचर, स्लेव लिटरेचर और अफ्रीकाअमेरिकन लिटरेचर-, अफ्रीकन देशों में ब्लैक लिटरेचर और ऑस्ट्रेलिया में एबोरिजिनल लिटरेचर तो अंग्रेजी में इंडीजिनस लिटरेचर और ट्राइबल लिटरेचर कहते हैं। भारत में इसे हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में समानता 'आदिवासी साहित्य' कहा जाता है।"[2]

आज आदिवासी साहित्यकारों में आदिवासी एवं गैर आदिवासी रचनाकारों ने आदिवासियों के सामाजिक जीवन पर प्रकाश डाला है। रमणिका गुप्ता, हरिराम मीणा, महादेव टेप्पो, महुआ माजी, निर्मला

पुतुल, अनुज लुगुन, ज्योति लकड़ा, ग्रेस कुजूर आदि रचनाकारों ने आदिवासी साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान कर रहे हैं।

आज विश्व भर में पूंजीवाद के प्रसार के साथ वंचित शोषित तबको के सरोकार को आवाज देना अपने परम कर्तव्य के रूप में स्वीकार किया है। आदिवासी कवियों ने।

औद्योगीकरण के मुखौटे के पीछे आदिवासियों को विस्थापित किया जाता है। उन्हें अपने ही जमीन से विस्थापित करने से, शहरों में दरदर की ठोकरें खा रहे हैं। आदिवासियों का जीवन बहुत सरल होता है। - भाले-वे भोले, शहरी जीवन के चकाचौंध से दूर, अपनी परंपरा व सांस्कृतिक मूल्यों को ही सर्वस्व मानकर जीवन जीते हैं।

निर्मला पुतुल ने आदिवासियों को अपने कविताओं में माध्यम से स्वर प्रदान करने का सशक्त प्रयास किया है। उसी संदर्भ में लिखते हैं कि -

"इन खतरनाक शहरी जानवरों को पहचानों

चुड़का सोरेन

तुम्हारे भोलेपन की ओट में

इस पेंचदार दुनिया में रहते

तुम इतने सीधे क्यों हो चुड़का ?"[3]

आदिवासी लोग जंगलों में रहते हैं। जंगलों में रहने वाले जीवजंतुओं को-, नदी और पहाड़ों को अपना परिवार मानते हैं। पेड़ प्रकृति के प्रति अटूट प्रेम होता है। पौधों की पूजा करते हैं। इसलिए इन्हें- जंगलों को छोड़कर जाना पड़ रहा है। प्रकृति के पुत्र कह सकते हैं। पर विकास के नाम पर इन्हेंलिए इन्हेंइस पर्यावरण का असंतुलन बढ़ इससे रहा है। इसी संदर्भ में ग्रेज कुजुर लिखते हैं कि –

"इसलिए फिर कहती हूँ

ना छोड़ों प्रकृति को

अन्यथा यह प्रकृति करेगी भयंकर बगावत

और तब न तो तुम होंगे न हम होंगे।"[4]

आदिवासियों के अधिकारों का हनन किया जा रहा है। पूँजीपतियों और प्रशासनिक अधिकारियों ने आदिवासियों को अपने पैरों तले रौंद रहे हैं। मनुष्यता का ह्रास हो रहा है। यह आदिवासियों की ही नहीं वरन् उनकी संस्कृति है।परंपराओं की भी हत्या-

इसी संदर्भ में महेश शर्मा लिखते हैं कि –

"यह संसार के सबसे सरल आदमी का दुख था

यह भूख थी अगर तो उनलोगों की थी,

जो मिट्टी के बिस्कुट गढ़कर दे रहे थे

अपने बच्चों को

जो बीचबीच में देख लेते थे आकाश-

अगर यह हत्या थी

तो यह एक आदिवासी की हत्या थी।"[5]

आदिवासी लोग सिर्फ और सिर्फ अपनी जमीन की वापसी चाहते हैं और सरकार से पुनर्वास। विस्थापित होने के बाद गरीबी, तिरस्कार, शोषण, अपमान को झेलते हुए श्राप ग्रस्त जीवन जी रहे हैं। आज भी अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष कर रहे हैं।

"कंक्रीट से दबी पगडंडी की तरह

दबी रह जाती है जिनके जीवन,

की पदचाप, बिलकुल मौन।"[6]

जहाँ आदिवासी लोग अपमान का घूँट पीकर जी रहे हैं, वही आदिवासी स्त्रियों की स्थिति और भी अधिक हृदयविदारक दर्शित होती हैं। सदियों से ही स्त्री, पुरुष दंभ, अहंकार व वासना का शिकार हो रही हैं। आदिवासी स्त्री को सबसे अधिक शारीरिक व मानसिक शोषण का शिकार बनाया जा रहा है। अपनी जमीन से दूर होकर बड़ेड़े शहरों में काम करना पड़ रहब-ा है और यही स्त्रियों को शोषित किया जाता है। जैसे -

"ये वे लोग हैं

जो हमारे बिस्तर पर करते हैं

हमारी बस्ती का बलात्कार

और हमारी ही जमीन पर खड़े हो

पूछते हैं हमसे हमारी औकात।"[7]

जो कभी जंगल का मालिक हुआ करता था, जो अपने विशिष्ट परंपराओं, लोकगीतों के कारण जाने जाते थे। आज वे लुप्त होते जा रहे हैं।

"मैं केवल देह नहीं

मैं जंगल का पुश्तैनी दावेदार हूँ

पुश्ते और उनके दाव भरते नहीं

मैं भी मर नहीं सकता

मुझे कोई भी

जंगलों से बेदखल नहीं कर सकता

उलगुलान।

उलगुलान।।

उलगुलान।।।"[8]

आज राजनीति वोट बैंक की राजनीति बन गई है। जिसमें नीति की अपेक्षा राज को ही अधिक महत्व दिया जाता है।

सरकार आदिवासियों के लिए कल्याणकारी योजनाओं द्वारा उनके जीवन को सुधारने का प्रयास करने की घोषणा कर रही है। पर वास्तविकता में -

"न उन्हें जमीन का मुआवजा दिला सके

न ही जमीन के इस्तेमाल पर

मुनाफ़े का आधा हिस्सा

मगर राजनीति में अपने हिस्से के लिए

जल, जंगल, जमीन के साथ

जो हमेशा कर आए

अपने जमीर का सौदा।"[9]

आज आदिवासी जागृत हो रहे हैं। अपने अधिकारों को समझ रहे हैं। अपने जमीन से दूर होकर शहरों में मजबूरी में मजदूरी करके प्रताड़ित किये जा रहे हैं। आज वे अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे हैं। इसी बात को 'कलुआ माँझी' में कलुआ के द्वारा रमणिका गुप्ता कहती हैं कि –

"मैं क्रांति चाहता हूँ तो

तुम हिंसा कहते हो

मैं इन्कलाब मांगता हूँ तो

तुम एडबेंचरिस्ट कहते हो।"[10]

भारतीय संविधान में आदिवासियों को विशेष दर्जा देता है। जैसे पाँचवीं और छठी अनुसूची एवं पेसा (PESA) कानून उनके अधिकारों की रक्षा करते हैं।

पर आज भी उनकी स्थिति में आशाजनक सुधार संभव हो न सका। फिल्मों में, सोशल मीडिया में आदिवासियों के वेशभूषा-, उनका नृत्य, उनके लोकगीतों को दर्शाया जा रहा है। पर वास्तविक रूप में उनके जीवन की आर्थिक व सामाजिक समस्याओं को, उनकी विडंबनाओं को, देश की जनता को समझाना अति आवश्यक है।

इसी संदर्भ में महादेव टोप्पो जी लिखते हैं –

"देश में पैदा होने का मतलब है

आदमी का जातियों में बँट जाना

और गलती से अगर तुम हो गए पैदाजंगल में-,

तो तुम कहलाओगे

आदिवासीवगैरह-वगैरह-गिरिजन-वनवासी-

आदमी तो कम से कम कहलाओगे नहीं।"[11]

जिस दिन जनमानस में अलगाव की भावना की जगह उनके प्रति सकारात्मक, सम्मानयुक्त दृष्टिकोण का विकास होगा, तभी आदिवासियों के सामाजिक जीवन में विकास हो सकेगा।

आज आदिवासी साहित्य पर लेखनी आरंभ हो चुकी है, पर किन्तु वास्तव में यह आदिवासियों की समस्या नहीं, बल्कि मानवता की हत्या की दास्तान है। लुप्त हो रहे मानवीय मूल्यों का विकृत रूप है।

प्रताड़ित हो रहे शोषितों के चीखों में हमारी पतनावस्था का बीज बोया गया है और ये ऐसा दावानल है जो संपूर्ण देश व विश्व को अपने भीतर विस्फोटित कर सकता है।

आज हमारी उपेक्षा, नजरअंदाज के कारण प्रकृति का प्रकोप प्रलय बनकर तहसनहस कर-, मानव जीवन को ध्वंस कर रहा है। ठीक उसी तरह सामाजिक जीवन में समरसता को बनाये रखने का सार्थक प्रयास करने से, आर्थिक स्थिरता प्राप्त कर, जीवन सुखमय एवं बोधगम्य बना सकते हैं।

अतकि आदिवासी त चुनौतियों को दर्शाता है। क्यों आदिवासियों के समक्ष प्रस्तुआदिवासी काव्य : जनमा साहित्यहमारे समाज का ही अंग है। आदिवासी काव्यनस को प्रेरित कर, राष्ट्रीय एकता की भावना को और भी दृढ़ बनाने का प्रयास कर रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची -:

1. आदिवासी कौनरमणिका गुप्ता .सं -, पृ 27-26 .सं.
2. मुक्त ज्ञानकोश विकिपीडिया से
3. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी (सं.) रमणिका गुप्ता निर्मला पुतुल की-'चुड़का सोरेन' कविता - 76 .सं.पृ
4. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी (सं.) रमणिका गुप्ता ग्रेस कुजुर की कविता-'हे समय के पहरेदारों' कविता 24 .सं.पृ -
5. धूल की जगह 19 .सं.पृ - महेश शर्मा -
6. आदिवासी विमर्श और हिंदी साहित्य 206 .सं.पृ - कुमार वीरेन्द्र -
7. नगाड़े की तरह बजते शब्दये वे लोग हैं जो -, महेश पुतुल 54 .सं.पृ -
8. सुबह के इंतजार में – हरिराम मीणा, पृ 26-25 .सं.
9. ईश्वर और बाज़ार – जसिंता केरकेट्टा 107 .सं.पृ -
10. आदिवासी कविताएँ – रमणिका गुप्ता – पृ13 .सं.
11. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, (सं.) रमणिका गुप्ता 49 .सं.पृ -

****